गीत
रवीन्द्र भ्रमर के
गीत

रवीन्द्र भ्रमर के गीत

•

नयी पीढ़ी के प्रसिद्ध कवि
डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के चुने हुए
गीतों का संग्रह

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : सन् १६६२ ईसवी

मूल्य ३·५० न० पै०

मुद्रक—एन० जी० सहगल, यू० पी० प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
४२, एडमॉन्स्टन रोड, इलाहाबाद ।

समर्पण

नयी कविता के गर्भ
से जन्म लेती हुई
गीतधारा को
आस्था पूर्वक



आभार

मेरे गीतों का यह संग्रह इस रूप में प्रकाशित हुआ है, इसका श्रेय श्री राजा मुनुआ (श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन) को है। राजा भइया मुझ पर सदैव कृपालु रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि लक्ष्मी के इस वरद पुत्र तथा सरस्वती के सहृदय उपासक से कभी उऋण भी हुआ जा सकता है क्या ?

रवीन्द्र भ्रमर

प्रस्तावना

•

गीत रचना के नये आयाम

हिन्दी काव्य में गीत-रचना की परंपरा बड़ी पुरानी है। राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं में रंगे हुए मैथिल कोकिल विद्यापति के 'पद', निर्गुण-निराकार की सरस अनुभूतियों से झंकृत कबीर आदि संत-कवियों के 'शब्द' तथा भक्ति-भाव *की मार्मिक अवतारणा करने वाले सूर-तुलसी-मीरा आदि वैष्णव कवियों के* 'लीलागान' हमें उस वैभव पूर्ण परंपरा का विस्तृत परिचय देते है। आधुनिक साहित्य के अन्तर्गत, छायावाद-युग में इस परंपरा का और अधिक परिपाक हुआ—परिपाक इस अर्थ में कि गीत-काव्य (लिरिक-पोएट्री) की आधुनिक-पाश्चात्य विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर सतर्क भाव से एवं विपुल मात्रा में गीत-सृष्टि की गई। छायावाद-युग की काव्य-साधना को, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर, गीत-काव्य की साधना कहा जा सकता है। 'यामा' की भूमिका लिखते समय महादेवी ने छायावाद-युग को गीत-प्रधान युग की संज्ञा दी थी। उस युग के समर्थ कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा गीत की सूक्ष्म परिकल्पना को साकार किया और हिन्दी के गीत-विधान को सफलता के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। यहीं से एक गतिरोध की अवस्था उत्पन्न हो गई। छायावादी कवियों की कला-साधना के फल-स्वरूप गीत सृष्टि में ऐसा निखार आया कि उसे और आगे बढ़ाने, उसको दिशा मोड़ देने की सम्भावना धूमिल प्रतीत होने लगी। छायावाद के पराभव के अनेक कारण हमें ज्ञात हैं। उसकी कल्पना विलासी (पलायनवादी) सौन्दर्य सृष्टि युग-जीवन की बदलती हुई कठोर वास्तविकताओं से जूझने में अक्षम सिद्ध हो रही थी। इसके अतिरिक्त, शिल्प की दृष्टि से छायावाद क्रमशः कौशल-प्रधान हो उठा था, रचना के नाम पर कोमल-कान्त पदावली, तुक-ताल-लय एवं अप्रस्तुत आदि के आलंकारिक आयोजन ही कवियों के लिए अभ्यास की वस्तु बन गए थे। सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में "छायावाद इसलिये अधिक नहीं रहा कि उसके पास

भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्य बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। और, वह काव्य न रह कर अलंकृत संगीत बन गया था।" (आधुनिक कवि, भाग २ भूमिका, पृ० ११)

छायावाद ने गीत-रचना को एक अत्यन्त परिमार्जित 'पैटर्न' दिया था। बाद की नयी कवि-प्रतिभाओं के लिए उक्त 'पैटर्न' को छोड़कर गीत रचना करना बहुत मुश्किल प्रतीत हुआ। अधिकांश कवि अनुकरण तथा पिष्टपेषण के रोग से ग्रस्त हो उठे। कुछ थोड़े से लोगों ने गीत-सृष्टि को ही त्याज्य और हेय मान लिया। छायावाद के कल्पना-रंजित रोमानी गीतों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप इस धारणा को बहुत बल मिला कि नये युग-बोध की अभिव्यक्ति गीतों के व्यक्तिनिष्ठ परिधान में नहीं की जा सकती। अस्तु, मुक्त छन्द तथा मुक्त अनुभूतियों की नयी कविता के प्रवाह में हिन्दी की परंपरागत गीतधारा विलुप्त होती-सी प्रतीत हुई। प्रगतिवाद के पास तो ऐसी सामग्री ही न थी जिसे काव्य के आन्तरिक संगीत से सम्पन्न मानकर गीत की विधा दी जा सकती और प्रयोगवाद ने एक सीमा तक जानबूझ कर आग्रह-पूर्वक गीत रचना का विरोध किया। नये युग बोध को नये काव्य रूप मे ढालने की बात उठायी। नये सिरे से काव्य-सत्य का सन्धान करने तथा कविता को अनावृत-अनलंकृत भाव से प्रतिष्ठित करने का आन्दोलन चलाया। यह सत्य है कि प्रयोगवाद को इन उद्देश्यों में पर्याप्त सफलता मिली, लेकिन इस सचाई से भी विमुख नहीं हुआ जा सकता कि प्रयोग करने वाले अनेक अनबूझ कवियों ने कविता को गद्य के बहुत निकट लाकर खड़ा कर दिया।

छायावादी गीत-सृष्टि के विरुद्ध होने वाली व्यापक प्रतिक्रिया, प्रगतिवाद के संगीत विहीन परुष स्वर तथा प्रयोगवाद के अन्वेषण-आग्रह के बावजूद, हिन्दी की गीतधारा एक दम सूख नहीं पायी। गीत-रचना की दिशा में छिट-फुट प्रयोग बराबर होते रहे। बराबर इस बात के लिए प्रयास किया जाता रहा कि छायावाद के अलकृत गीत 'पैटर्न' का परित्याग करके गीत-काव्य को उसके सहज और स्वाभाविक स्वरूप में प्रतिष्ठित किया जा सके। कुछ गीतकार यह चेष्टा भी करते रहे कि गीतों के व्यक्तिनिष्ठ माध्यम से ही समष्टि की, युग के नये यथार्थ तथा नये सौन्दर्य-बोध की सन्तुलित अभिव्यक्ति की जा सके। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद तथा नयी कविता के परिपार्श्व मे एक नयी गीतधारा बराबर अपना पंथ सँवारती रही। गीत रचना के नये आयाम विकसित होते रहे। अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद

मिश्र, नरेश मेहता तथा केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियों के गीत-प्रयोग इस विकास का साक्षी प्रस्तुत करते हैं। छायावादोत्तर काव्यधारा के इस नवीन गीत-प्रवाह का समुचित मूल्यांकन करने के लिए एक विशेष प्रकार की सावधानी आवश्यक है। नया गीत-प्रवाह सूक्ष्म और अन्तर्वर्ती रहा है। ऊपर-ऊपर से या तो पुराने ढर्रे के छायावादी गीतों की बाढ़ रही है, या फिर मुक्त छन्द में प्रयोगों का वेग प्रबल रहा है। गीत-रचना के नये आयाम के प्रश्न पर उक्त सूक्ष्म एवं अन्तर्वर्ती प्रवाह को पृथक् रूप से लेना चाहिए।

पाश्चात्य गीति-काव्य के प्रभाव से, छायावाद युग में गीत की संज्ञा को विषय और रचना के एक संकुचित दायरे में बाँध दिया गया था। नये गीतों में उस अर्थ-संकोच के स्थान पर एक विस्तार की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है। नया गीतकार गीत की एक अति सहज परिभाषा देना चाहता है। वह गीत-रचना के लिए न तो व्यक्तिनिष्ठता की क़ैद लगाना चाहता है और न रागात्मिका वृत्ति की। वह सिद्ध करना चाहता है कि कोई भी छन्द, वाक्य अथवा पद जिसमें एक भावगत संगीत हो, गीत की संज्ञा का अधिकारी है। आज का गीत-कवि शब्द, लय अथवा छन्दगत संगीत पर उतना बल नहीं देता। काव्यगत संगीत का तात्पर्य कवि-कंठ के ललित गायन अथवा सुर-ताल गत सांगीतिक विधान से नहीं लेना चाहिए। काव्य का संगीत गायकी के संगीत से नितान्त भिन्न वस्तु है। एक का संगीत अन्तर्मुखी है, दूसरे का बहिर्मुखी। काव्य में प्रयुक्त शब्द अपने अर्थ-संगीत को मौन स्वरों में मुखरित करते हैं। इसके विपरीत संगीत में अर्थ प्रायः मौन रहते हैं और मुखरित स्वरों के संघात एवं संयोजन से राग-रागिनियों की सृष्टि की जाती है। अस्तु, काव्य अथवा गीतकाव्य का संगीत आन्तरिक, अर्थ-संयुक्त तथा भावगत ही हुआ। नया गीत-कवि अपनी गीत-सृष्टि में इसी भावगत संगीत को प्रधानता देता है। उदाहरणार्थ, 'दूसरा सप्तक' से शमशेर का एक गीत-प्रयोग द्रष्टव्य है। यहाँ व्यक्तिनिष्ठता, तुक और छन्द के आग्रह से परे एक व्यापक अर्थगत संगीत को ही ध्वनित करने की चेष्टा दिखलायी पड़ती है—

बाले दीप
चतुर नारि ने
पिय आगमन को।

सन्ध्या को पलकें मुकीं,
फैलीं अलकें मारी
पिय की सुमुखि प्यारी ने
अंगिया से दीप धर
याले
पिय आगमन को।

छायावादी गीतों के प्रति प्रगतिवाद, प्रयोगवाद अथवा नयी कविता के रूप में जो तीव्र प्रतिक्रिया हुई उसे बहुत समय तक हर प्रकार की गीत-सृष्टि के विरुद्ध माना गया। अभी कल तक, नये युग बोध का कवि, गीतकार कहलाने में एक संकोच का अनुभव करता था। नयी कविता की ओर से गीत-रचना के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता था कि गीत के सीमित परिधान में युग-जीवन के यथार्थ तथा बदलते हुए मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। यह आरोप छायावादी शैली के व्यक्तिनिष्ठ गीतों की दृष्टि से एक हद तक सही है। नये गीतों ने जहां गीत-काव्य की परिभाषा बदलने की कोशिश की है, वहीं यह भी सिद्ध कर दिया है कि गीत तो एक सहज एवं लोकप्रिय काव्य रूप मात्र है और इस विधा के माध्यम से कैसी भी विषय-वस्तु को सहृदय जनों तक प्रेषित किया जा सकता है। सामाजिक यथार्थ हो अथवा कोई नया मूल्य, सबकी अभिव्यक्ति गीतों के रूप में की जा सकती है। इस दृष्टि से परंपरागत लोकगीत (ट्रेडिशनल फोक सांग्स) नये गीतकार का पथ प्रशस्त करते हैं। लोकगीतों के माध्यम से प्रायः सामूहिक सुख-दुःख की अभिव्यक्ति हुई है और वे सामाजिक यथार्थ की पीठिका पर आधारित जान पड़ते है। ऐसी स्थिति में युग के यथार्थ का संवहन करने वाले साहित्यिक गीतों की भी सृष्टि की जा सकती है। आज के नये गीत-कवियों ने इस दिशा मे पर्याप्त प्रयोग किये है। केदारनाथ सिंह अपनी 'धानों का गीत' शीर्षक एक रचना (युगचेतना, मई १९५६) मे बादल का आह्वान इसलिए करते हैं कि फसल के उगने की सम्भावना दृढ़ हो। अन्न से मन प्राण का सम्बंध बतलाने की आवश्यकता नहीं—

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल ज़रूर।

चन्दा को बाँधेंगे कच्ची कलगियाँ
सूरज को सूखी रेत में,
आना जी बादल ज़रूर।

गीत-रचना का नया प्रवाह प्रयोगवाद तथा नयी कविता की उपलब्धियों से लाभान्वित होता आया है। छन्द के शिल्प की दृष्टि से तो कोई खास समझौता सम्भव नहीं था। अधिक-से-अधिक यही किया गया कि तुकों के दुराग्रह को छोड़ दिया गया और जहाँ कहीं छन्द की गति भाव-प्रतिमा की सहज निर्मिति में बाधक सिद्ध हुई वहाँ उसे मुक्त और चुस्त अथवा शिथिल कर दिया गया, किन्तु गीत-शिल्प में मुक्त छन्द के लिए कोई खास गुंजाइश नहीं की जा सकी। गीत काव्य का अर्थ-गत संगीत छन्द सापेक्ष्य होता है। मुक्त छन्द के साथ उसकी संगति नहीं बैठ पाती। अस्तु, नये गीतों में, नयी कविता के मुक्त छन्द के अतिरिक्त उसकी अन्य वस्तु रूपगत प्रवृत्तियों को प्रतिफलित होते देखा जा सकता है। नये गीतों के सामाजिक परिवेश तथा यथार्थवादी स्वर को अनेक रचनाओं के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है। आज का नया गीत-कवि नयी कविता के कवि की भाँति अपने युगधर्म का निर्वहन कर रहा है। वह अपनी गीत-सृष्टि के द्वारा युग की संघर्ष-भावना तथा उसके भीतर से उभरते हुए नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का प्रयास कर रहा है। शम्भु नाथ सिंह की 'युग-बोध' शीर्षक एक रचना नये गीत की विस्तृत होती हुई भावभूमि के सन्दर्भ में उद्धरणीय है। उक्त रचना (वासन्ती, दिसम्बर ६१) इस प्रकार शुरू होती है—

जहाँ दर्द नीला है
वहीं कहीं मैं हूँ।
जहाँ नहीं आदमी, नहीं आदम-जात,
समय जहाँ पथराकर बन गया पहाड़
जहाँ सिर्फ़ रात, सिर्फ़ रात, सिर्फ़ रात।
बहता अनवरत जहाँ
अन्धड़ रेतीला है
वहीं कहीं मैं हूँ।

छायावादी गीतों में [illegible] किया था। [illegible] की वैयक्तिक अनुभूतियाँ [illegible]

में इस पक्ष की उपेक्षा नहीं की गई है। अनेक गीतकारों ने समय-समय पर प्रणय-गीतों की सृष्टि की है, किन्तु इनमें और छायावादी गीतों में एक तात्विक भेद है। छायावाद ने सहज मानवीय प्रेम को एक रहस्य के अवगुंठन में अलौकिक अर्थात् अमानवीय बना देने की चेष्टा की थी। प्रतीकों की प्रतीकवादी पद्धति तथा व्यंजना के लाक्षणिक विधान के कारण सीधी से सीधी प्रणयानुभूति भी छायावादी गीतकारों द्वारा एक पहेली के रूप में प्रस्तुत की जाती थी। नये गीतों में इस प्रकार की प्रवृत्ति से दूर निकलने का एक सहज संकल्प उल्लेख्य है। नया गीतकार अपनी रोमानी अनुभूतियों को किसी रहस्य के आवरण में नहीं व्यक्त करता। प्रेम कोई गुप्त अथवा असामाजिक प्रवृत्ति नहीं है कि काव्य में उसकी अभिव्यक्ति को गोपनीय बनाने की चेष्टा की जाय। प्रेम के संयोग-पक्ष की उन्मुक्त एवं सहज अभिव्यक्ति की दृष्टि से रवीन्द्र भ्रमर की एक रचना द्रष्टव्य है—

अँजुरी में
बाँध लिये
जूही के फूल!
मधुर गन्ध,
मन की हर एक गली महक गई,
सुन्दर परस,
रग रग में चिनगी सी दहक गई,
रोम रोम
उग आये
माथों के शूल!
जूही के फूल!!

छायावाद युग में गीत का रचना-तंत्र क्रमशः जटिल होता गया था। कोमल-कान्त पदावली, संस्कृत गर्भित भाषा और कुछ थोड़े से एक ही ढर्रे के मात्रिक छन्द छायावादी गीतों की पहचान बन गये थे। पदान्त में तुकों का प्रयोग आग्रहपूर्वक किया जाने लगा था। अलंकार के नाम पर प्रयुक्त होने वाले अप्रस्तुत रूढ़ और नीरस हो गए थे। छायावादोत्तर युग में लोकप्रिय कवि बच्चन ने अपने कृतित्व द्वारा एक सहज गीत-शिल्प देने की चेष्टा की। उन्होंने गीत-रचना के लिए भाषा की सरलता और अभिव्यक्ति की सादगी तथा सीधेपन पर विशेष बल दिया। किन्तु, उनके साथ चलने वाले अन्य गीतकार शिल्प की वह ताज़गी न दे

पाये। इस अभाव की पूर्ति व्यापक रूप से नये गीत-कवियों ने की। प्रयोगवाद शिल्प की दिशा में अन्वेषण तथा मौलिकता का आग्रह लेकर आया था। परिणाम स्वरूप नये गीतों में भी रचनागत ताज़गी और नवीनता का समावेश करने की चेष्टा की गई। काव्य-भाषा तथा काव्य-शिल्प के नवीनीकरण के सम्बंध में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'इतिहास' में एक महत्वपूर्ण बात कही है—"पण्डितों की बाँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है। जब-जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।" (पृ० ६०८-६०९, १९४८ ई०)। नये गीत-कवियों ने छायावाद के बँधे हुए बासी शिल्प से मुक्ति पाने के लिए इस प्राकृतिक भावधारा का अनुशीलन किया है। नये गीतों में लोक प्रचलित ग्रामगीतों की अनेक विशिष्टताओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है। केवल भाषा, छन्द और अभिव्यक्ति की सादगी नहीं, वरन् ताजे बिम्ब और टटकी अनुभूतियों को भी लोकगीतों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा की गई है। नये कवियों ने बराबर यह महसूस किया है कि लोकगीत लोक-मानस के सुख-दुःख की वाणी होने के कारण लोक-चेतना का सीधा संस्पर्श करते है। अस्तु, नये गीतों को अधिक प्रभावशाली तथा व्यंजनापूर्ण बनाने के लिए लोक-गीतों की मूल अन्तर्वर्ती चेतना को आत्मसात् कर लेना चाहिए। इस दिशा में सर्वाधिक सफल प्रयोग ठाकुर प्रसाद सिंह ने किये हैं। इनका नया काव्य-संग्रह 'वंशी और मादल' लोकगीतों की चेतना से अनुप्राणित है। लोकभाषा तथा लोकगीतों के रचना-शिल्प का एक अभिजात प्रयोग राम दरश मिश्र की निम्नांकित गीत-रचना में द्रष्टव्य है —

संध्या को लौटे मेले से
जैसे राही हारे
बादल चले जा रहे।
छुप-छुप गाँवों की पगडंडी, मुँह धो उठीं खेत की गलियाँ
ताज़े कंठों को कजली धुन, झम-झम झाँसी-गोर बिजलियाँ
"फिर कब आओगे परदेसी"

पूछ रहीं मनमारे,
बादल चले आ रहे।
—नयी कविता, ३

छायावादी शिल्प के अन्तर्गत संक्षिप्तता को गीत-काव्य की विशेषता के रूप में स्वीकार किया गया था किन्तु उस शैली का गीत-कवि "आरती बन जाय" की 'टेक' को प्रायः तब तक नहीं छोड़ पाता था, जब तक कि 'भारती' और "पुकारती बन जाय" के तुकों की अति नहीं हो जाती थी। छायावादोत्तर युग के कवियों में यह प्रवृत्ति और अधिक हास्यास्पद हुई। गीत-रचना के नाम पर तुकों की प्रदर्शनी सजायी जाने लगी। कवि सम्मेलनों के मंच पर अधिक समय तक जमने के लिए लम्बे गीत, दुराग्रह पूर्वक लिखे गए। प्रयोगवाद और नयी कविता के विवेक से युक्त नये गीत-कवियों ने इस प्रवृत्ति का परित्याग किया है। किसी भी भावात्मक क्षण की अभिव्यक्ति स्वभावतः दीर्घ नहीं हो सकती। गीत-रचना में तो कवि अपनी तीव्रतम अनुभूति को वाणी देता है। ऐसी अनुभूति एक 'फ्लैश' के रूप में प्रायः क्षण स्थायिनी होती है। रचना को विस्तार देने के मोह से यदि उक्त अनुभूति को अनावश्यक रूप मे पल्लवित किया जाय तो वह वर्णन-प्रधान हो उठती है और उसकी प्रभावान्विति क्रमशः क्षीण होती जाती है। अस्तु, नयी कविताओं की भाँति, नये गीत आकार मे छोटे होने लगे हैं।

गीत-रचना की नयी प्रक्रिया जटिल प्रतीकों तथा बासी अप्रस्तुतों को प्रकृत्या अंगीकार नहीं करती। छायावाद-शिल्प के अधिकांश प्रतीक रहस्योन्मुख रहे। अप्रस्तुतों को प्रायः प्रकृति के सौन्दर्य-तत्वों के रूप मे ग्रहण किया गया। नया गीतकार अपने चारों ओर के फैले हुए जीवन और समाज से अपनी रचना के अलंकरण-उपादान चुनना चाहता है। उसे नये-टटके अप्रस्तुतों तथा वर्तमान की अर्थवत्ता को ध्वनित करने वाले नये सशक्त प्रतीकों की तलाश है। नये गीतकार में प्रयोगशीलता और नयी कविता के संस्कार पूरी मात्रा में हैं। अस्तु, वह गीत के सृजन-शिल्प तथा शैली की दिशा में नये प्रयोगों के प्रति आस्थावान् है। आस्था का अर्थ आग्रह नहीं समझना चाहिए। यदि किसी प्रकार का आग्रह है तो ताज़गी और नवीनता के प्रति है। दुष्यन्त कुमार की निम्नांकित रचना दो परिचित बिम्बों के संयोजन द्वारा निर्मित अप्रस्तुत के माध्यम से एक संशयग्रस्त मनःस्थिति का बोध कराती है। रचना मे मूल भाव के प्रस्तुतीकरण की सादगी और नवीनता द्रष्टव्य है—

"मानसरोवर की
गहराइयों में बैठे
हंसों ने पाँखें दीं खोल।
शांत मूक अम्बर में
हलचल मच गई
गूंज उठे त्रस्त विविध बोल।
शीप टिका हाथों पर
आँख मींची,
शंका से—
बोधहीन हृदय उठा डोल।"

(सूर्य का स्वागत)

प्रयोगवाद के आरम्भिक उत्साहपूर्ण वातावरण मे हर प्रकार का गीत-सृष्टि का विरोध किया गया था। अब 'नयी कविता' के रूप में प्रयोगवाद की उपलब्धि सामने आ गई है और नयी कविता के उन्नायकों को यह शंका होने लगी है कि वह (नयी कविता) निस्तेज हो रही है (देखिए-परिचर्चा-नयी कविता : ५-६)। पुराने ढर्रे के छायावादी गीत कहीं मुश्किल से दिखायी पड़ते हैं। सस्ते मनोरंजन के गाने कवि सम्मेलनों तक सीमित रह गए हैं। और, इस सारी उथल-पुथल के बीच नव-गीत सृजन की साहित्यिकधारा अपना पंथ निर्मित करती रही है। इस धारा को और अधिक प्रशस्ति प्राप्त करनी है। कुछ लोग कहते हैं कि युग की कुंठा और संघर्ष ने मानव-मन की गान-वृत्ति का दमन कर दिया है। अब काव्य मे गीत-रचना के दिन चले गए। यह एक थोथी और गलत दलील है।

अनुक्रमणिका

•

पंछी में गाने का गुन है,
दो तिनके चुन कर
वह तृप्त जहाँ होता है
गीतों की कड़ियाँ
बोता है !
सूखा पेड़
कँटीली टहनी
बियाबान, सुनसान—
उसे नहीं खलते हैं
उसके तन में
चुभी हुई है
कोई वंशी,
उसके रोम रोम में
सुरवाले, मीठे सपने पलते हैं।

•

१

चाँद को झुक-झुक कर देखा है।

साँझ की तलैया के
निर्मल जल दर्पन में
पारे सी विछलन वाले
चमकीले मन में—

रूप की राशि को परेखा है।

दिशा बाहु पाशों में
कसकर नभ साँवरे को—
बहुत समझाया है
इस नैना बावरे को—

वह पहचाने मुख की रेखा है।
चाँद को झुक-झुक कर देखा है॥



२

बाँध लिये
अंजुरी में
जूही के फूल।

मधुर गन्ध,
मन की हर एक गली महक गयी
सुखद परस,
रग रग में चिनगी सी दहक गयी
रोम रोम
उग आये
साधों के शूल !!

जोन्हा का जादू
जिन पंखुरियों था फैला,
छू गन्दे हाथों
मैंने उन्हें किया मैला,
हाथ काट लो—
मेरे............
सजा है कबूल !!

आह !
हो गई मुझसे
एक बड़ी भूल !
अंजुरी में
बाँध लिये
जूही के फूल !!



२

उनसे प्रीत करूँ, पछताऊँ !

सोन महल लोहे का पहरा,
चारों ओर समुन्दर गहरा,
पंथ हेरते धीरज हारूँ
उन तक पहुँच न पाऊँ ॥

प्रीत करूँ, पछताऊँ !

इन्द्र धनुष सपने सतरंगी
छलिया पाहुन छिन के संगी,
नेह लगे की पीर पुतरियन
जागूँ, चैन गँवाऊँ।

प्रीत करूँ, पछताऊँ ॥

छिपे चनरमा नभ दर्पन में
छाया तेरे पारद मन में,
पास न मानूँ, दूर न जानूँ
कैसे अंक जुड़ाऊँ ?

प्रीत करूँ पछताऊँ,
उनसे प्रीत करूँ, पछताऊँ ॥



४

एक पल निहारा तुम्हें
एक दुख रीत गया।

वारी तुम्हें एक दृष्टि,
मिली अमित सुधा सृष्टि,
एक क्षण दुलारा तुम्हें—
एक युग बीत गया।।

वंशी के पहले स्वर,
गूँज गये भू अम्बर,
एक शब्द वारा तुम्हें
गुन एक गीत गया।।

तन के मन के अर्पण,
बने प्रीत के दर्पण,
एक दाँव हारा तुम्हें
एक जनम जीत गया।।

एक पल निहारा तुम्हें
एक दुख रीत गया।।



५

धीरे-धीरे स्वर उठाओ
कोई तार टूटे ना !

प्रीत बंसरी अमोल
पोर पोर रिसे बोल
गीत हौले हौले गाओ
कोई छंद छूटे ना !

राग रंग रँगे गात
नैन ओट सारी बात
प्यार पलकों में छिपाओ
कोई भेद फूटे ना ।

नाव न तो कूल गहे
औ न बीच धार बहे
पाल आधे से झुकाओ
कोई लहर रूठे ना ।

कोई तार टूटे ना
धीरे धीरे स्वर उठाओ.....

●

६

तुम बिन !
यह मौसम कितना उदास लगता है—
तुम बिन !

घर पीछे तालाब
उगे हैं लाल कमल के ढेर
तुम आँखों में उग आयी हो
प्रात गन्ध की बेर;
यह मौसम कितना उदास लगता है—
तुम बिन !

झर झर हरसिंगार झरते हैं
पवन पुलक के भार
हार गूँथ लूँ, किन्तु
करूँ किस वेणीका शृंगार;
यह मौसम कितना उदास लगता है—
तुम बिन !

नयी हवा की छुवन
बोल पंछी के नये नये
सब कुरेदते याद तुम्हारी
मन पर सब उनये;
सचमुच, यह मौसम उदास लगता है—
तुम बिन !

•

७

बात है
शब्द नहीं हैं
कैसे खोल दूँ ग्रंथित मन !!

तुम अधीर प्रान हुए कुछ सुनने को
मर्म के उगे दो आखर चुनने को,
प्रीति है
मुक्ति नहीं है,
कैसे तोड़ दूँ सब बन्धन ?

बाँसुरी लगी है लाज नहीं बजेगी
स्वर की सौतन राधा नहीं सजेगी,
कंठ है
गान नहीं है,
रूठ न जाना मन मोहन ॥

पाँव लग रहूँगी मौन,
सहूँगी व्यथा,
कह न सकूँगी अपने
स्वप्न की कथा
भाव है
छन्द नही हैं
मौन ही बनेगा समर्पन !!

कैसे खोल दूँ ग्रंथित मन ?
बात है—शब्द नहीं हैं,
मौन ही बनेगा समर्पन ॥

८

जादूगर की जात तुम्हारी ।
मेरी विद्या तुमसे हारी ॥

बड़े सयाने हो, मायावी !
अपने मुख पर चाँद उगा कर
मेरी आँखों में लहरा देते हो
अबुझ प्यास का सागर,
खारे जल में बह जाती हूँ—
मैं व्याकुल बिरहा की मारी !

जादूगर की जात तुम्हारी ।
मेरी विद्या तुमसे हारी ।

अधरों में मुस्कान बसी है,
मोहन मंत्र पढ़ा करते हो !
वंशी के स्वर, वशीकरण के—
कोमल छन्द गढ़ा करते हो ।
बिना दाम ही, नाम तुम्हारे—
मैं बिक बैठी हूँ बनवारी !!

जादूगर की जात तुम्हारी।
मेरी विद्या तुमसे हारी ॥

सच कहती हूँ, श्याम, तुम्हारे
नैनों में जादू टोना है,
इनके चलते, इसी जनम में,
अब जाने क्या क्या होना है!
आज हुई बदनाम, और कल.....
सारी उम्र रहूँगी क्वांरी ॥

मेरी विद्या तुमसे हारी
जादूगर की जात तुम्हारी ॥



९

पथ अगोरते लाज लुट गयी
मीत नहीं आये।
रन्ध्र रन्ध्र रिस गयी बासुरी
पोर पोर रीते,
स्वर संवारते वेला रूठी
गीत नहीं आये।
पंखुरियाँ मुरझीं पंकज की—
मुख छवि म्लान हुई,
नयन नीर रीते
दुख के दिन बीत नहीं पाये।
एक लाग है, एक लगन है,
उन्हें रिझाने की,
इतनी आयु गंवाकर
अब तक जीत नहीं पाये।
पथ अगोरते लाज लुट गयी
मीत नहीं आये।



जितने क्षण बीते हैं तुम्हारे बिना
उन सबमें केवल प्रणाम तुम्हें भेजे हैं।

सपने मे संग संग
जगने में परदेस।
छिन सम्मुख छिन ओझल
छलिया के भेस।

जितने क्षण भटके हैं तुम्हारे बिना
उनमें साधों के विश्राम तुम्हें भेजे हैं।

ओसों सुबहें रोईं,
दियों जली शाम,
तारों रातें टूटीं–
दिन गिनते नाम,

जितने क्षण तड़पे हैं तुम्हारे बिना
उन सब में आँसू अविराम तुम्हें भेजे है।

पथ अगोरती आँखें
पथराई है,
अवधि जोहती बाँहें
अकुलाई है,

जितने क्षण छूटे हैं तुम्हारे बिना
उन सबमें वय के विराम तुम्हें भेजे हैं।

टूट चले वंशी स्वन
रुक चली पुकार
टेरते तुम्हें, मेरे–
गीत गये हार,

जितने क्षण टूटे है तुम्हारे बिना
उनमें साँसों के परिणाम तुम्हें भेजे हैं।
जितने क्षण बीते हैं तुम्हारे बिना
उन सबमें केवल प्रणाम तुम्हें भेजे है॥



११

गुच्छ-गुच्छ फूले कचनार !
भूली बिसरी राहों लौट आ
ओ मेरे प्यार !

आ कि तुझे अलसाये स्वर दूँ
कोकिल की कू-हू वाला नीलाम्बर दूँ,
आ कि तुझे नयी कोपलों की सौगन्ध
आ कि आम्र मंजरियों फूट गयी गन्ध,
वन-उपवन, घर बाहर,
उठ रही गुहार
एक ही गुहार—
भूली बिसरी राहों लौट आ
ओ मेरे प्यार।

कंठ-कंठ उठते ये गीत नये
खेतों खलिहानों पर होरी के छन्द छये,
जौं गेहूं की जवान वालों सा हिया
स्वागत मे खिरकी दरवाजे सब खोल दिये,
डर लगता, अनसुनी न हो
यह पुकार
एक ही पुकार—
भूली बिसरी राहों लौट आ
ओ मेरे प्यार !

कुछ अजब उदासी, कुछ टूट रहा
मुखरित साधों का पल अनगाया छूट रहा,
फूलों वाला मौसम, चोटें अनगिन
असफल प्रतीक्षा ज्यों रीत रहे दिन,
हर क्षण को डुबा रहा
फागुन का ज्वार
कहाँ मिले पार !
भूली बिसरी राहों लौट आ,
लौट आ, ओ मेरे प्यार !
फूले कचनार·········

१२

तान दिये चँदवे
हरियाली के !

केसर से भर दी रस क्यारियाँ
गुच्छों में झुला दिये फूल
मधुवासित कर दी फुलवारियाँ

सपने लौटे है
वनमाली के !

तान दिये चंदवे
हरियाली के !

कोकिल के कंठ कुहुक-गान दिये
पपिहे को पिया की सुमिरिनी
अपने को भूठे क्षण, मान दिये

घाव क्यों भरें
मेरी आली के !

तान दिये चंदवे
हरियाली के !

हवा से कहा, बहिना ! धीरे बह
मेरी मंजरियाँ अनमोल
झर न जायं, पिछवारे बैठी रह

टिकोरे मिलेंगे
रखवाली के !

तान दिये चंदवे
हरियाली के !

मन को किन सीमाओं बाँधें।
पवन झकोरे
हर-सिंगार की टहनी झरती,
रीत रहा जीवन
पर, कोई साध न भरती;
नित्य नई गंधों बस जाने की आकुलता—
मन को किन फूलों आराधें।

ज्वार नहीं थमते
जलयान हो रहे डगमग,
किसी भँवर में
डूब न जाये यह सारा जग;
इच्छाओं के बोझ पहाड़ लग रहे तन को
मन को किन पलरों पर साधें।
मन को किन सीमाओं बाँधें॥



तुमसे नाता जनम जनम का
जुग जुग तुमसे नेह !

सच मानो, तुम इस जीवन में, जीने का आधार,
बिना तुम्हारे, और कौन दे पाता इतना प्यार;
परस तुम्हारे चरन बना है–
नन्दन मेरा गेह।
जुग-जुग तुमसे नेह !

इतना शीतल रूप कि पलकों ! आँजूँ आठों याम,
तुम भी मुझे समर्पित, आँचल-टाँके मेरा नाम;
हम दोनों ज्यों सावन भादों
मैं रिमझिम, तुम मेह।
जुग-जुग तुमसे नेह !

तुम तन-मन में गूँज रही, वंशी की स्वर-लहरी,
तुम्हें बाँध गीतों, बँधने की अभिलाषा दुहरी,
दो आशीष कि मुक्त न हो
इस बन्धन मेरी देह।
जुग-जुग तुमसे नेह !

तुमसे नाता जनम जनम का....



१५

बच्चे जैसा मन—
कैसे वहलाऊँ ?

परिवर्तनकी चाह–
छांह ज्यों फैली
नयी नवेली गुड़िया
छिनमें मैली,
कितनी गुड़ियां से
घरबार सजाऊं !

शाम लगे
जग जाते सपन रँगीले
ज्यों–
कन्दीलों, गुब्बारोंके मेले,
नये खिलौने–
रोज कहाँ से लाऊँ ? .

जितने संगी
सुख के जितने साथी–
मिट्टी के सवार
लकड़ी के हाथी,
किससे रूठूं
किसको गले लगाऊं ?

सीमा है,
सीमाओं की रेखा है,
लेकिन–
आगे का पथ अनदेखा है,
विरमूं कहां
कहां तक चलता जाऊं ?

बच्चे जैसा मन–
कैसे बहलाऊं ?

●

१६

आज का यह दिन
तुम्हें दे दिया मैंने !

आज दिन भर तुम्हारे ही ख़यालों का लगा मेला
मन किसी मासूम बच्चे सा फिरा भटका अकेला
आज भी तुम पर
भरोसा किया मैंने !

आज मेरी पोथियों मे शब्द बनकर तुम्ही दीखे
चेतना मे उग रहे है, अर्थ कितने, मधुर-तीखे
आज अपनी जिन्दगी को
जिया मैंने !

आज सारे दिन बिना मौसम घनी बदली रही है
सहन-आँगन में उमस की प्यास की धारा बही है
सुबह उठकर नाम
जो ले लिया मैंने !

आजका यह दिन
तुम्हें दे दिया मैंने !



१७

झुर-मुट की ओट
कहीं चाँद डूबता रहा
खिरकी से झाँकता रहा
तुम्हारा मुख।
हवा आई—
बालों में उंगली उलझा गई,
बेले की गंध झुकी—
ओठों पर छा गई;
सुधियों की चोट
एक सपन टूटता रहा
पलकों में—
जागता रहा पुराना सुख।
खिरकी से
झाँकता रहा तुम्हारा मुख॥

●

भूल से भी जो बँधे,
रेशमी बंधन, न टूटे।
पंथ के जादू भरे स्वर
प्राण-मन छलते रहे,
एक से फिर दूसरी
मंज़िल मिली, चलते रहे,
दूरियाँ बढ़ती रहीं,
जो हुए अपने, न छूटे।
सांझ की परछाइयां
दुहरी हुईं, बदली घिरी,
चाँद ने आँखें चुरा ली,
दर्द की छाया तिरी;
रात ने सब कुछ किया,
भोर के सपने न लूटे।
आस औ' विश्वास के
पाहुन दगा देते रहे,
एक मन पर सैकड़ों,
आघात हम लेते रहे;
चोट तो इतनी लगी
मोह के मणिघट न फूटे।
रेशमी बन्धन न टूटे—
भूल से भी जो बँधे॥

१९

चाँदनी के पंख-सी
उजली-धुली तुम कौन ?

तुम्हे तिरते बादलों के बीच देखा है,
दृष्टि-पथ मे कौंध जाती विज्जु-लेखा है,
विज्जु लेखा—
नाप ले जो सृष्टि का विस्तार,
प्रकृति मे
भूगोल मे
पिघली-घुली तुम कौन ?
चाँदनी के पंख सी
उजली धुली तुम कौन ?

चिर अमा के प्रात, उगती उषा का आभास,
चतुर्दिक ज्यों फैल जाए बन धवल हिमहास,
ठीक वैसी ही—
तुम्हारी रुपहली पहचान,
पुतलियों में पैठ
अन्तर-पट तुली तुम कौन ?
चाँदनी के पंख-सी
उजली-धुली तुम कौन ?

स्वप्न में ज्यों अप्सरा की अनुकरित, प्रतिमूर्ति,
जागरण में प्राण-संगिनि सलज नारी मूर्ति,
कल्पना को अगम—
अनुभव को सहज रमणीय,
ना विवस्त्रा
नाति गोपा,
अधखुली तुम कौन ?

कौन तुम ?
चाँदनी के पंख सी उजली-धुली.........



२०

फूलों वाला है यह मौसम—
यह मौसम फूलों वाला है!

सहजन, अमलतास, टेसू,
गुलमुहर सभी ने फूल खिलाये;
शाखों पर सपने उग आये;
उजले, पीले, सुर्ख, गुलाबी—
रंगों वाला है यह मौसम,
यह मौसम रंगों वाला है!

जाने किन रंगीन घाटियों से
छन कर आता है हर छन;
बहका-बहका-सा लगता मन
हल्की, गाढ़ी, तरल, शराबी—
गंधों वाला है यह मौसम,
यह मौसम गंधों वाला है!

साँझ, सकारे, दुपहरिया,
वन कोयल बोले, तरु तृन बोले;
आस निगोड़ी दर-दर डोले :
सहज, सुघर, गोरी, महताबी—
यादों वाला है यह मौसम,
यह मौसम यादों वाला है!

फूलों वाला है यह मौसम,
यह मौसम रंगों वाला है!!



२१

तोड़ो मौन की दीवार !
झाँकने दो मुझे अपने हृदय के उस पार ।

ये बहुत खामोश कुम्हलाई हुई आँखें
शिथिल सन्ध्या तीर श्यामा खगी की पाँखें
कह रहीं, तुम कहीं आये—
दाँव कोई हार ।

मलिन मुख ज्यों वेदना की फूँक का दर्पन
यहाँ विम्बित है तुम्हारा चोट खाया मन
मूक अधरों पर तड़पते—
बेवसी के ज्वार ।

सुनूँ तो मैं कहो अपनी पीर मुझसे कहो
बह सको तो बहो मेरी चेतना में बहो
मैं करूँ हलका—
तुम्हारे वक्ष का दुख भार ।

झाँकने दो मुझे अपने हृदय के उस पार—
तोड़ो मौन की दीवार ।।



२२

खुल कर बिखर गये
किसके घुँघराले केश,
बादल फिर घिर आये मेरे मारू देश।

काले-काले केश
सजे री, श्वेत बलाका फूल,
पछुवे की झकझोर
झरे री, चर्चित चन्दन धूल,
हाथ किंगरी
कान्हे कमरी
मैं हो जाऊँ जोगी वेश।
बादल फिर घिर आये मेरे मारू देश!

बड़ी-बड़ी हिरना आँखों में
भरे संवरिया श्याम,
सपनों के सावन झूले पर
होती उम्र तमाम,
नागफनी सी
सुधियां तन को—
आत्मा को है अनगिन क्लेश।
बादल फिर घिर आये मेरे मारू देश!

लट हट जाय तनिक माथे से
दमके सोना रेख,
कंचन काया मिट्टी होती
कारे बदरा देख,
'मेरे' मन को
किसकी आग ?
कौन कंता छाये परदेश!
बादल फिर घिर आये मेरे मारू देश!

खुलकर बिखर गये
किसके घुंघराले केश
फिर बदल
घिर आये.........

●

२३

रूठो मत—
मन मेरे
मुझसे मत रूठो !

लदे हुए फूलों से स्वप्न बिखर जायेंगे
अमलतास के पीले गुच्छे झर जायेंगे
लौट नहीं आयेंगे
फिर ये पहर वसन्ती,
छूटो मत—
क्षण मेरे,
मुझसे मत छूटो !

आँख-आँख होकर मैं केवल तुम्हें निहारूँ
तुम पर रीझूँ, जग की सारी छवियाँ वारूँ
तुम्हें टाँक लूँ
प्राणों के सतरंगे पट पर,
टूटो मत—
प्रण मेरे,
मुझसे मत टूटो।

तरु से छाँह बँधी है मैं हूँ साथ तुम्हारे
प्रात किरन ने सौंप दिया है हाथ तुम्हारे
तुमने आँखें फेरीं
तो मेरा क्या होगा,
लूटो मत—
धन मेरे,
मुझको मत लूटो!

मत रूठो
मन मेरे
मुझसे मत रूठो॥

तुमको पाकर जुड़ा गये हैं प्रान।
मरुथल में गूँजे हैं निर्झर गान॥

कातिक की क्वाँरी लजवन्ती धूप
नयन सफल है निरख तुम्हारा रूप
तुम तो जैसे जुग-जुग की पहचान।

फागुन मे सहजन सिरीस कचनार
महमह चारों ओर तुम्हारा प्यार
घर आँगन में कोकिल कंठी तान।

सावन में मन भावन रिमझिम मेह
हर छन नेह तुम्हारा शीतल देह
जीवन विलसित ज्यों हरियाले धान।

मरुथल मे गूँजे हैं—
निर्झर गान,
तुमको पाकर
जुड़ा गये है प्रान॥

२५

कितनी बार लौट आया हूँ
छू कर वन्द किवाड़ तुम्हारे।

तुमने खुद आवाज वदल कर
है कह दिया कि तुम्हीं नहीं हो,
वाहर कितने काम काज हैं
उन सबमे ही व्यस्त कहीं हो,
तुम यदि सच कह देते
तो भी मैं तुमसे नाराज न होता,
किसी गली में भटका करता
पहर दोपहर तक मन मारे।

कभी झरोखे से दीखी है
जब भी कोई झलक तुम्हारी,
तुम छिप गये किसी कोने में
वस आँखें रह गयी उघारी,
मैंने समझा कोरा भ्रम था
तुम होते तो सम्मुख आते,
इन छलनाओं में विखरे हैं
कितने सपने साँझ सकारे।

फिर न कभी आने का निश्चय
कच्चे धागे सा टूटा है,
मिथ्या का संकल्प मान
मुट्ठी से खिसक गया-छूटा है,
यादों में जब तिर आयी है
दृष्टि-रंजना मूर्त्ति तुम्हारी,
पाँव चल पड़े हैं मिलने को
तुमसे, अपनी खुदी बिसारे।

शीशे में परछाईं उगती
तुम प्राणों के बीच उगे हो,
प्राण बसे हैं देह-गेह मे
तुम अपने हो बहुत सगे हो,
ऊपर के पर्दे उतार कर
मुझ छाया को अंक लगा लो,
बाहर की परिकरमा करते
मेरे पाँव थक गये हारे।

कितनी बार लौट आया हूँ
छू कर बन्द किवाड़ तुम्हारे॥

●

फागुन की बदरी बरस गई।
सरसों की पियरी भीगी,
गेहूँ के गोरे गात,
वन-टेसू की मेंहदी भीगी
धरती का अहिवात;
वासन्ती के अंग-अंग—
सावन-भादों की सुध सरस गई।

अभी शिशिर की सिहरन से ही
बिंधे हुए थे प्रान,
उस पर इस असमय रिमझिम ने
मारे बूँदों बान;
पीर जगी एकाकीपन की—
आस निगोड़ी तरस गई।

जग होरी-चौताला गाये
मैं कजरी के गीत,
गीली आँखड़ियों को भाये
दिन बरखा के मीत,
भरम भरी कोयलिया कूके—
हूक हिया को परस गई।
फागुन की बदरी बरस गई॥

●

२७

आज चाँद को गल जाने दो
आज जाग लूँ सारी रैन।

तरल जुन्हैया की तरुनाई
तनसे रिस प्राणों तक आई

आज अकेलापन डंसता है
आज नहीं है जी को चैन।

सोया घर, आँगन है सूना
दिन का दुख लगता है दूना

सन्नाटे को बेध रहे है
निर्मोही के बंसी-बैन।

रजनी गंधा की, पुरवाई
आंचल में कलियां ले आई

आज दर्द को खिल जाने दो
आज झरें रतनारे नैन।

आज चाँद को गल जाने दो
आज जाग लूँ सारी रैन।



बिना पुकारे शून्य सदन में
नाम तुम्हारा गूँजे मन में ।

छत से दीवारों से छन कर
बिन बरखा की बरखा बन कर
प्रान उमगते दृग दर्पन में—
रोके पीर रुके ना तन में ।

खिरकी के पर्दे पर लजती
पुरवैया की पायल बजती
फूल कहीं फूला रन-वन में—
गन्ध न बँध पाती बन्धन में ।

ताख धरे दीपक की बाती
जलती जोत उगलती जाती
किरनें फैल रहीं आँगन में—
लग ना जाये आग वदन में।

द्वार दिखे कँपती सी छाया
लगता कोई जब तब आया
व्यर्थ प्रतीक्षा के इस छन में—
युग न समा जाये जीवन में।

नाम तुम्हारा गूँजे मन में
बिना पुकारे शून्य सदन में॥



मेरी नाव बाँध लो
अपने तट से।
मुझे गुज़र जाने दो
इस पनघट से ॥

फटा-पुराना पाल अजान दिशाएँ
झंझाओं की मार कहाँ वह जाएँ
महाप्रलय सी इस जीवन वेला में
बेड़ा लग जाने दो
अक्षयवट से ॥

और न कोई छाँव न कोई थल है
जो है एक तुम्हारा ही सम्बल है
दोपहरीके सूरजको मैं झेलूं
दे दो थोड़ी छाँव
रेशमी पट से ॥

जल नागों से लड़कर हारा हूं मन
विष बाधाओं बीच तुम्हारा हूं मन
गह लो मेरी बाँह उबारो मुझको
इस हर क्षण के
जनम-मरन संकट से ॥

मेरी नाव बाँध लो
अपने तट से.........
बाँध लो अपने तट से !!



संझवाती की बेर,
देर ना करो,
संगिनी ! दिये जला दो !

अब न शेष दिन-मणि का मेला,
अन्धकार में भटकेगा पंछी सा—
कोई पंथ अकेला,
स्नेह बरसती सुघर उँगलियों
हर मद्धिम बाती उकसा दो।
दिये जला दो।

रात उतर आई आँगन में,
बरस रहीं काली छायाएँ—
तह पर तह जमती है मन में,
जरा चीरने तम की छाती
तेज किरण की कोर चुभा दो।
दिये जला दो।

दृष्टि-साधना सोई सोई,
क्या कुछ देखूं, कैसे देखूं,
दुनिया लगती खोई खोई
ले मशाल, यह तमस फूंक दो
दृश्य, अदृश्य सभी दिखला दो।
दिये जला दो।

मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर,
भक्त जनों की भीड़ लगी है—
फूट रहे हैं अर्चा के स्वर,
ज्योति-देवि ओ ! किरन-करों से
नव-प्रकाश बांसुरी बजा दो।
दिये जला दो।

संभवाती की बेर
देर ना करो,
संगिनी दिये जला दो !

•

३१

मेरा क्षण-क्षण तुम्हें समर्पण ।
मैं जो हूँ वह तुमको अर्पण—
तुम्हे समर्पण मेरा क्षण क्षण ।।

जैसे पनघट का पानी गागर को
जैसे ताल तलैया का पानी सरिता को
जैसे सरिता का पानी सागर को,
वैसे ही ओ स्नेह सिन्धु !
मेरी जीवन धारा तुममे खो जाय
मै निचोड़ दूँ बूँद बूँद अस्तित्व अहम् का
मेरा कण कण तुम्हें समर्पण ।।

शक्ति शिराओं मे बिजली का वेग
बिजली घन की सघन भुजाओं मे बँधने को
बन्धन में मिट जाने का आवेग,
सत्य यही है, यही साध्य है,
मैने इसको जाना, हाँ पहचाना
मै मिट जाऊँ लगूँ तुम्हारे चरण धूल बन
ऐसा हर प्रण तुम्हें समर्पण ।।

तुम्हे समर्पण मेरा क्षण क्षण
मैं जो हूँ वह तुमको अर्पण ।।



३२

सीढ़ी से सरक गयी धूप
कलशों पर ठहर गयी शाम ।

मन्द पड़ी पवन की बुहार
ठमक गयी नद्दी की धार
मछुओं ने दुहर लिये जाल
मछलियों करो अब आराम ।

पंछी ने गुंजा दिये नीड़
पनघट पर गागर की भीड़
मन्दिर में पूजा के गीत
एक और दिन हुआ तमाम ।

मुरझा मुख, केतकी उदास
आँखों में मिलने की आस
काँप गया आँचल का दीप
याद आ रहा किसका नाम ।

फूलों के पीले भुज छन्द
भौंरों के गीत हुए बन्द
कलियों ने फिर फिर सोचा
कल होंगी हम भी बदनाम ।

सीढ़ी से सरक गयी धूप
कलशों पर ठहर गयी शाम ॥



नाम याद आया तो गीतों पुकारूँगा

दूध धुला रंग, अंग
मुकुलित मंजरियों-सा
लाज ढरे नयन, वयन
बिखरी वंसरियों सा
रूप याद आया तो पलकों उतारूँगा

सम्मुख रहो, न रहो
छवियों रँगा मन है
बाहों बँधो, न बँधो
सुधियों का बन्धन है
प्यार याद आया तो सपनों दुलारूँगा

ऐसे ही मीत, दिवस
रैन बीत जाएँगे
साँसों की राह विरह-
कल्प रीत जाएँगे
मिलन याद आया तो भरसक बिसारूँगा

३४

मन को इतना भरमाते हो,
कहो, कौन-सा सुख पाते हो ?

मेरा पंथ अकेला है, तो—
मुझे अकेले ही चलने दो,
मिल क्यों जहाँ-तहाँ जाते हो ?
मिल कर बिछुड़ कहाँ जाते हो ?
मन को इतना भरमाते हो !
कहो, कौन-सा सुख पाते हो ।

जितनी बार मिले तुम प्यारे,
देखे उतने रूप तुम्हारे,
क्यों हर बार बदल जाते हो ?
हर परिचय को छल जाते हो ?
मन को इतना भरमाते हो !
कहो, कौन-सा सुख पाते हो ?

मैं तृष्णा-घट लिये भटकता,
मरुथल का विस्तार न कटता,
क्यों बादल बन घिर आते हो ?
बिन बरसे क्यों फिर जाते हो ?
कहो, कौन-सा सुख पाते हो ?
मन को इतना भरमाते हो !!



बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ।

गरज गई, चमक गई, बूंदों के बान गए,
अकेली रही मैं, मेरे सब अरमान गए,
व्यर्थ गए सोलह सिंगार,
मेघ भले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ।।

चौमासे को झर निर्झर बन कर बह गई,
मैं बौरी प्यासी की प्यासी ही रह गई,
उतर गया नद्दी का ज्वार
प्रान छले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ।।

अमराई की पीड़ा फिर गूंगी हो गई,
मैं फिर प्रिय के मीठे सपनों में खो गई,
सो गई पपीहरा पुकार
गान छले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ।।



३६

हर बार
मेरी हार,

मुझको सहज ही स्वीकार
मेरी हार!

केन्द्र बन कर रहूँ
फिर भी परिधियों से दूर,
छू न पाऊँ तुम्हें
आकुल प्राण हों मजबूर,
एक आँगन में मिलें हम—
पर, न ढह पाए
निगोड़ी बीच की दीवार।
मेरी हार
मुझको सहज ही स्वीकार
हर बार!

बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ।

गरज गई, चमक गई, बूँदों के बान गए,
अकेली रही मैं, मेरे सब अरमान गए,
व्यर्थ गए सोलह सिंगार,
मेघ भले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ॥

चौमासे की झर निर्झर बन कर बह गई,
मैं बौरी प्यासी की प्यासी ही रह गई,
उतर गया नदी का ज्वार
प्रान छले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ॥

अमराई की पीड़ा फिर गूँगी हो गई,
मैं फिर प्रिय के मीठे सपनों में खो गई,
सो गई पपीहरा पुकार
गान छले गए ।
बीत गई बरखा बहार
मेघ चले गए ॥

•

२६

हर बार
मेरी हार,

मुझको सहज ही स्वीकार
मेरी हार!

केन्द्र बन कर रहूँ
फिर भी परिधियों से दूर,
छू न पाऊं तुम्हें
आकुल प्राण हों मजबूर,
एक आँगन में मिलें हम—
पर, न ढह पाए
निगोड़ी बीच की दीवार।
मेरी हार
मुझको सहज ही स्वीकार
हर बार!

पहर दिन देखा करूँ
पर, आँख प्यासी रहे,
हसूँ, बोलूँ, सब करूँ
फिर भी उदासी रहे,
बात मन की कह न पाऊँ,
अनसुना रह जाय
मेरा हर धड़कता प्यार।
मेरी हार
मुझको सहज ही स्वीकार
हर बार!

हृदय का हिमखंड पिघले
पिघल कर जम जाय,
धमनियों में रक्त दौड़े
दौड़ कर थम जाय,
इस व्यथा को तुम न समझो
डुबाता ही रहे मुझको
जिन्दगी का ज्वार
मेरी हार
हर बार
मुझको सहज ही स्वीकार।

●

३७

कहाँ फूला है
पूजा का फूल
गंध उड़ आई है!

गमक गूंजती गली गली मे
सब रस है उस कुन्द कली मे
घायल हुई पुरवाई
गंध उड़ आई है।

किस वन जाऊं पाऊं कहाँ उसे
अब, कैसे ले आऊं यहाँ उसे
कैसी होगी सुघराई
गंध उड़ आई है।

फूल मिले वह माथे चढ़ाऊं—
आंखों में रख लूं छाती जुड़ाऊं
प्रेम भक्ति गहराई
गंध उड़ आई है।

भौंरे को वरजूं, मन नहीं माने
मन नहीं माने, औ सौ हठ ठाने
जाग उठी है तरुनाई
गंध उड़ आई है।

वही फूला है पूजा का फूल
गंध उड़ आई है॥

●

३८

बादल ! गरज उठे प्राणों में
बिजली ! कौंधे चारों ओर।

घटा जामुनी गुच्छों वाली
उतर गई आँखों में आली
बुंदा छुटे, पलक भर आई,
डूबे मन के छोर।

बादल ! गरज उठे प्राणों में
बिजली ! कौंधे चारों ओर।

ऐसे झोंके शोख हवा के
कुछ पुरवा के कुछ पछुवा के
पेंग बढ़ा सुधि के झूले पर
भूल गये चितचोर।

वादल ! गरज उठे प्राणों मे
बिजली ! कौंधे चारों ओर।

झीनी पड़ी फुहार मही पर
चिहुक उठा वनमोर कहीं पर
एक नवेली साध मिलन की
देह गई झकझोर।

वादल ! गरज उठे प्राणों में
बिजली ! कौंधे चारों ओर।

चौमासे की वात कहूँ क्या
दुख-सुख की वरसात कहूँ क्या
तन की तृषा, पपीहा वोले,
लगी लगन की डोर।

वादल ! गरज उठे प्राणों में
बिजली ! कौंधे चारों ओर।



३८

सखि !
यह प्यार,
नदी की धार।

प्यासे कंठ करूँ स्वीकार–
सखि !
यह प्यार
नदी की धार।

जेठ तपे दुपहरिया तप ले
तप ले प्रान समीर ,
ठाढ़े श्याम बजावें वंसी
कालिन्दी के तीर,
गीतों की रसमय बौछार ।
भीगें मन के कूल कछार ॥ सखि !.....

चंचल लहर मीठा पानी
मद्धिम मंदिर बहाव,
मैं तो इसमें डूब नहाऊँ
अपने मन के चाव,
मुझको घर हो यह मझधार।
बुझ ले मेरी तृषा अपार॥

प्यासे कंठ करूँ स्वीकार
सखि ! यह प्यार
नदी की धार !
सखि !.....

बन फुलवा फूले सिंगार के मलिनियाँ।
एक हार गूँथ दे सँवार के मलिनियाँ॥

ऋतु नयी नवेली कुछ जादू कर लाई है,
गली-गली गमक उठे नयी गन्ध छाई है,
कर सगुन विचार देख कौन घड़ी आई है,
दे दूँगी पैजनी उतार के मलिनियाँ।
एक हार गूँथ दे सँवार के मलिनियाँ॥

द्वारे की पग ध्वनि से गूँज उठे मन आँगन,
शायद अब लौटे वे कातिक के चंद वदन,
जा तूही देख तुझे शुभ हो वह प्रिय दर्शन,
मुझको दिन फिर आये प्यार के मलिनियाँ।
एक हार गूँथ दे सँवार के मलिनियाँ॥

दर्पन में उगती गोरे तन की झाँकी री,
मैं तो बड़ भागिन लगती पी को बाँकी री,
एक मधुर छवि मैंने भी मन में आँकी री,
रंग उड़े आते अभिसार के मलिनियाँ।
एक हार गूँथ दे सँवार के मलिनियाँ॥



बोल गया
पंछी मन पिहका
कुछ बोल गया।

एक किरन ठगी जल दर्पन पर कांप गई
एक लहर दौड़ी चौड़ी छाती नाप गई
अन्तस का एक सिन्धु डोल गया।
बोल गया
पंछी मन पिहका
कुछ बोल गया।

पंछी मन क्या बोला! गमक उठी शहनाई
लजवन्ती एक कली घूंघट मे खिल आई
यादों की एक गाँठ खोल गया।
बोल गया
पंछी मन पिहका
कुछ बोल गया।



ज़िन्दगी जीने का दर्द !

एक प्याला ज़हर का
जो मौत की रानी के हाथ
बाखुशी हम पी रहे है
गो हमे पीने का दर्द !
उम्र के होठों से लगकर
ढल रहा यूँ जामे वक्त
हम नशे मे झूमते है
भूल कर सीने का दर्द ।
चश्मे साकी की कसम
जो मैकदे की जान है
पी रहे हैं, तो समझ लें
क्या है नौशीने* का दर्द !
ज़िन्दगी जीने का दर्द !



---

* मीठी शराब

४३

नीम के जालीदार साये
थोड़ी-थोड़ी चाँदनी
छन-छन कर आये।

झिहिर झिहिर झोंके समीर के
उड़ आते वंशी स्वर फूलों के तीर के
कौन वही एक धुन बजाये
सुन जिसको एकाकी हृदय दरक जाये
नीम के जालीदार साये
थोड़ी-थोड़ी चाँदनी
छन-छन कर आये।

वनपाखी को क्या कुछ हो गया
अक्सर चिहुक उठता है जैसे कुछ खो गया
मन उसका दर्द नहीं पाये
फिर किस बोली में क्या कह कर समझाये।

नीम के जालीदार साये
थोड़ी-थोड़ी चाँदनी
छन-छन कर आये ।

चाँद अभी बाकी है गलने को
रात बहुत व्याकुल है प्राणों मे ढलने को
पलकों को नीद नही भाये
आँखों में परदेशी मीत हैं समाये ।

थोड़ी-थोड़ी चाँदनी
छन-छन कर आये ।
नीम के जालीदार साये ।



नयी किरन पूरब के माथे
फूट रही है,
हम पर तम की छाप लगी थी
छूट रही है,
जाग रहे है सोये जीवन
आलोकित हो रहे प्राण-वन !!
नीड़ों में शिशु-खग
उड़ने को पंख तोलते,
संकल्पों के दूत
प्रगति के द्वार खोलते,
शान्ति-कान्ति के गीतमय चरन
छूने को हैं नया लक्ष्य-धन !!
नवयुग का नायक
हिमगिरि के उच्च शिखर पर;
फूंक रहा निर्माणों की
वंशी मे नव स्वर,
गूंज उठ रही जन-जन के मन
मुखरित मातृभूमि का कन-कन !!
थिरक रहा भारत के आँगन
नये पर्व का नया समीरन !!

●

४५

वंशी करो मुखर।
गूँज उठे युग की साँसों में
नव जीवन का स्वर॥

सदियों की सोई मानवता
ज्योति नयन खोले,
मिटे कलुष तम तोम
प्रभाती स्वर्ण रंग घोले;
उतरें देव स्वर्ग से
मधु के कलश लिये भू पर।
वंशी करो मुखर॥

वाणी की वीणा पर
शाश्वत सरगम लहराये,
नये स्वरों में नये भाव भर
कवि का मन गाये;
फूटें जड़ चट्टानों से
रस के चेतन निर्झर।
वंशी करो मुखर।

गूँज उठे युग की साँसों मे
नव जीवन का स्वर॥

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : एक परिचय

जन्म : ६ जून १६३४ ई०, जौनपुर (उ० प्र०) में।

शिक्षा : काशी विश्वविद्यालय से १६५४ ई० में एम० ए०, प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान के साथ। उक्त विश्वविद्यालय ही से १६५६ ई० मे 'डॉक्टर आफ फिलासफी' (हिन्दी) की उपाधि।

संस्कार : वैष्णव ब्राह्मण कुल के, जिनके स्थान पर व्यापक 'मानव धर्म' अंगीकार करने की चेष्टा जारी।

विशेष रुचि : लेखन, अध्ययन तथा अध्यापन के अतिरिक्त शास्त्रीय गायन, पर्यटन, बाग़बानी और शयन।

साहित्यिक कार्य : १६५१ ई० में 'तरुण साहित्यकार संघ' (जौनपुर), १६५४ ई० में 'तरुण कलाकार परिषद्' (काशी हि० वि० वि०) १६५७ ई० में 'कविता' (आरा) तथा १६६० ई० मे 'शाहाबाद लेखक कांग्रेस' की स्थापना। १६५५ ई० से १६५७ ई० तक 'अभिजात' (रचनात्मक संकलन) का सम्पादन।

कृतित्व :
१. रवीन्द्र भ्रमर के गीत (चुने हुए गीतों का संग्रह)
२. विजयसार की ढोल (कहानियाँ—ललित गद्य)
३. कविता-सविता (नयी कविताओं का संग्रह)
४. पद्मावत में लोकतत्व (शोध-समीक्षा)
५. हिन्दी कविता की नयी प्रवृत्तियाँ (आलोचना)
६. भक्ति साहित्य में लोकतत्व (शोध-ग्रन्थ)
७. सहयोगी लेखन :-
   हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ और २
   निकष, १, ३-४
   नयी कविता २, ३, ४-५

सम्प्रति : अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में